दलदल

अमर गोस्वामी

हिन्दी ADDA

दलदल

मयंक जी शब्दों के कारीगर थे। बहुत अच्छे कारीगर। शब्दों को गढ़ते, छीलते, काटते, तराशते। उन्हें रूप देते। कई तरह के रूप। शब्दों से वे फूल खिलाते। प्रकृति के रहस्यों को बूझने की कोशिश करते। उनके शब्द गरीबों के घरों में जाकर उनके आँसू पोंछ आते, लाचारों की लाठी बनकर खड़े होते। मयंक जी की कोशिश होती कि उनके शब्द सहारा बनें। अपने कवि की इसी में सार्थकता समझते थे। मयंक जी शब्दों से हर

प्रकार का भाव जगा सकते थे। उनके शब्दों से होकर जो गुजरता, वह कभी हँसता तो कभी रोता। उनके शब्दों से कभी अजान की आवाज सुनाई देती थी तो कभी मंदिर की घंटियों की। मयंक जी उन व्यक्तियों में थे जिनके लिए शब्द पवित्र होते हैं। वे शब्दों से प्रेम करते थे, उनसे नेताओं की तरह खेलते नहीं थे। शब्दों की दुर्दशा होते देखते तो वे खून के आँसू रोते।

शब्दों के संसार के मयंक जी का असली नाम अशर्फीलाल था। यह नाम उन्हें लोभ का बोध कराता था। अकाव्यात्मक लगता। उन्होंने अपना कवि नाम मयंक रख लिया। इससे उन्हें शांति की अनुभूति होती थी। और मयंक यानी चंद्रमा के दाग के कारण यह नाम उन्हें इस जगत के यथार्थ के करीब लगता था। मयंक जी जानते थे कि जीवन में सब कुछ बेदाग यानी चौबीस कैरेट का नहीं होता। ऐसा कुछ घटित हो ही जाता है जो आदमी को बाईस कैरेट का बना देता है। बाईस कैरेट का आदमी ही आज की दुनिया में स्तरीय और टिकाऊ समझा जाता है।

मयंक जी स्वयं के बारे में भली भाँति जानते थे कि वे अपने परिवार की नजरों में बेदाग नहीं हैं। वे जानते थे कि अपनी माँ से लेकर अपनी पत्नी और बेटे का दिल वे समय-समय पर दुखाते रहे हैं। माँ चाहती थी कि बेटा कोई छोटा-मोटा ही सही, अफसर बन जाए। या डॉक्टर या इंजीनियर। पर मयंक जी को अध्यापन रास आया क्योंकि इसमें उनके कवि को सुविधा थी। माँ इसी दुःख में जीवन की पतली गली से आँख मूँदकर उस पार खिसक गई। पत्नी राजेश्वरी भी मयंक जी के स्वभाव से निराश रहती थीं।

वह उन्हें आम लोगों से कुछ विचित्र-सा पाती थीं। कवि की पत्नी होने के नाते समाज में राजेश्वरी को वह इज्जत नहीं मिलती थी जो घोटाले में लिप्त निलंबित इंजीनियर की पत्नी होने के बावजूद कांता जी को मिलती थी। सपना जी को भी वही इज्जत मिलती थी जिनके पति स्थानीय विधायक के साथ लगे रहते थे। मयंक जी का बेटा प्रस्तुत भी अपने पिता से नाराज रहता था। उसे अपने पिता के दिए नाम से बड़ी चिढ़ थी। उसके दोस्त न उसका नाम ठीक से समझ पाते थे न बोल पाते थे। वे उसका मजाक उड़ाते। कॉलेज के कुछ अध्यापक भी उसका नाम लेते वक्त अपनी मुस्कराहट दबाने की कोशिश करते। एक बार हिंदी के एक अध्यापक ने निराला जी की चर्चा करते हुए जब कहा कि कवि तो पागल ही होते हैं, तब इसे सुनकर प्रस्तुत की ओर देखते हुए कुछ दुष्ट लड़के हँसे भी थे।

जब कोई बेटा खुलेआम पिता की रुचियों और उनकी समझ पर उँगली उठाने लगे तब समझ लिया जाता है कि बेटा जवान हो गया है। प्रस्तुत ने अपनी माँ से पिता के विरुद्ध अपनी असहमति जताना शुरू कर दिया था। राजेश्वरी मन ही मन खुश हुई थीं कि बेटा जवान हो गया है। वह उसकी शादी के बारे में खयाली पुलाव पकाने लगीं। उन्होंने सोच लिया कि जिस दिन प्रस्तुत को अपनी नौकरी की पहली तनख्वाह मिलेगी वे उसी दिन कॉन्वेंट में पढ़ी किसी सुंदर लड़की से उसकी शादी पक्की कर देंगी। प्रस्तुत को भी उन्होंने मयंक जी की इच्छा के विरुद्ध कान्वेंट स्कूल में शिक्षा दिलाई थी। राजेश्वरी नहीं चाहती थीं कि प्रस्तुत बड़ा होकर ठेठ हिंदी वाला बनकर अपना कैरियर बिगाड़े।

मयंक जी के शब्दों के संसार में राजेश्वरी और प्रस्तुत घबड़ाहट के कारण प्रवेश ही नहीं करना चाहते थे। मयंक जी की कविताएँ साहित्य जगत में भले ही सराही जाती रहें, उनके ही घर में नहीं पढ़ी जाती थीं। उन पर एक अघोषित पाबंदी लगी हुई थी। यह पाबंदी मयंक जी की आर्थिक गिरावट को देखकर लगी थी। विवाह के शुरू-शुरू में राजेश्वरी ने अपने पति की कविताओं को पढ़ने और सुनने में भरसक रुचि दिखाई थी। मगर बाद में उन्हें अरुचि होने लगी थी। उन्हें लगता था कि कविता का चक्कर नहीं होता तो मयंक जी ज्यादा व्यावहारिक होते। औरों की तरह उनका बैंक बैलेंस होता, अपना मकान होता। उन्हें साल-दो साल बाद किराये का मकान नहीं बदलते रहना पड़ता। मकान बदलने में राजेश्वरी को सबसे ज्यादा दिक्कत मयंक की लाइब्रेरी से होती थी। आलमारियों में भरी ढेर सारी किताबों को निकालना, रखना, सहेजना, बाँधना, फिर उन्हें नए मकान में जाकर खोलकर आलमारियों में फिर से व्यवस्थित करना बड़ी थकान का काम होता था। किताबों को रखने के लिए अलमारियाँ भी नाहक खरीदनी पड़ी थीं। इसके अलावा और भी किताबें दो-तीन संदूकों में भी ठुँसी हुई थीं, जिन्हें खोलकर देखने की नौबत ही नहीं आती थी। मयंक जी को जब कोई किताब ढूँढ़नी होती, तब उन्हें खोला जाता था। फिर तो उस दिन घर में चारों तरफ उस कमरे में किताबें नजर आतीं जिन्हें दुबारा ट्रंक में ठूँसने के लिए कभी राजेश्वरी या प्रस्तुत की जरूरत पड़ती। प्रस्तुत को यह अप्रिय काम करना पड़ता तो बेहद बड़बड़ाता। मयंक जी उसके इस स्वभाव पर मुस्कराकर रह जाते थे।

मयंक जी को आलमारियाँ विवशता में पुस्तकों की सुरक्षा के लिए खरीदनी पड़ी थीं। कुछ तो किताबों को चूहों से और कुछ उनसे मिलने आए मित्र साहित्यकारों से बचाने के लिए। इसके अलावा किराए के मकानों में शोकेस और वार्डरोब की जगह के अलावा कुछ और रखने के लिए दीवारों में जगह नहीं बनाई जाती थी। किताबों के प्रेमी

किरायेदार इतने कम होते थे और मकान मालिक भी चूँकि इस दीवानगी से बचे होते थे इसलिए घर में पुस्तक सजाकर रखने की वजह निकालने की बात किसी के ध्यान में ही नहीं रहती थी। शोकेस और कपड़े रखने की आलमारी में किताबें नहीं रखी जा सकती थीं। मयंक जी को किताबों के लिए हर बार अलग ही व्यवस्था करनी पड़ती। कुछ तो किताबें खरीदने की आदत के कारण और कुछ पुस्तक जगत के सहभागियों से भेंट में मिलती रहने के कारण, उनके पास किताबें निरंतर बढ़ती रहती थीं। मयंक जी को पुस्तकें बेहद प्रिय थीं। अगर वे लोककथाओं के राक्षस होते तो उनकी जान किसी किताब में ही बसी होती। किताबों की बढ़ती संख्या से आलमारियाँ बढ़तीं। जब-जब घर में किताबों के लिए नई आलमारी खरीदने की नौबत आती, एक छोटा-मोटा महाभारत छिड़ जाता था।

कभी-कभी प्रस्तुत खीझते हुए कहा, 'बाबा ने पूरे घर को लाइब्रेरी बना रखा है। जहाँ देखो किताबें ही किताबें। लगता है हम घर में नहीं, लाइब्रेरी में बैठे हुए हैं।' मयंक जी कहते, 'यह एहसास हो तो बुरा क्या है? खासकर उसके लिए जिसे अपने कैरियर के लिए पढ़ना ही पढ़ना है। ऐसे वातावरण में रहने से पढ़ाई अच्छी होती है।' प्रस्तुत कहता, 'इस दिखावे की लाइब्रेरी में मेरा मन क्या लगेगा। इसमें एक भी किताब ऐसी नहीं है जो मेरे कैरियर में मदद करे। एक बार यों ही खाली समय में एक कविता की किताब लेकर बैठ गया। कविताएँ तो अपनी समझ में नहीं आईं, जो कुछ अपना पढ़ा था, उसे भूलने की नौबत आ गई।' राजेश्वरी बोलीं, 'ये सब चीजें भूलकर भी नहीं पढ़ना बेटा! अपने पापा की तरह बिगड़ जाओगे।' मयंक जी ने कहा, 'तुम सब पढ़े-लिखे मूर्ख हो। हीरे को पत्थर समझते हो। मैं क्या कहूँ।'

'कहोगे क्या?' राजेश्वरी बोलीं, 'इस बार मकान बदलने से पहले इन किताबों को ठिकाने लगा दो। मुझसे बार-बार पैकिंग करते नहीं बनता। इसके अलावा जगह तो ये घेरती ही हैं। अपने दो-तीन संदूक भी इसमें फँस गए हैं। हम लोग तो सिर्फ इन्हें ढोने के लिए ही रह गए हैं। ऐसे ढोने से क्या फायदा?'

मयंक जी ने भी सोचा पत्नी ठीक ही कह रही है। अरुचिकर को ढोना पड़े तो वे बोझ ही बन जाती हैं। अपना मकान होता तो कोई बात नहीं थी। लेकिन इन स्थितियों में तो वाकई तकलीफदेह हैं।

काफी देर तक सोचने के बाद मयंक जी ने फैसला किया कि अपना पुस्तकालय वे किसी लाइब्रेरी को दे दें। घर का बोझ भी खत्म होगा, पुस्तकालय वालों को भी खुशी होगी और पुस्तकें पाठकों तक पहुँचेंगी भी। उनके पास ऐसी-ऐसी किताबें हैं जो किसी

भी पुस्तकालय के लिए प्रतिष्ठा बन सकती हैं। हर पुस्तक एक मोती है। मोतियों की इस लड़ी को उपयुक्त स्थान में रखना ही बेहतर होगा।

मयंक जी शहर में पुस्तकालय ढूँढ़ने निकल पड़े। उन्हें आश्चर्य हुआ कि शहर में कोई पुस्तकालय नहीं था। आजाद भारत में यह नया शहर बसा था। नए शहर में नए अमीर आकर बसे थे। ये अमीर हर आयु वर्ग के थे। अपनी स्थितियों और पेशों का दुरुपयोग करके अनाप-शनाप धन बटोरकर इस शहर में उन्होंने कोठियाँ खड़ी की थीं। पूँजीवाद पर आधारित इन घरों में बाहर छायावाद और भीतर रहस्यवाद नजर आता था। इन भवनों में सुंदर-सुंदर कुत्ते और अपनी काया को संतुलित बनाए रखने वाली महामायाएँ रहती थीं। इन भवनों के सुंदर फाटकों पर सुंतर पुतलों की तरह दरबान खड़े रहते थे। इस नए बसे शहर की सड़कें बड़ी सुंदर थीं जिन पर बिजली के सुंदर खंभे लगे हुए थे। सुंदर बाजार थे जिनमें सुंदर दुकानें थीं। उनमें अच्छी किताबों को छोड़कर दुनिया भर का सामान मिलता था। पिछले दिनों फैशनेबल किताबों की एक दुकान जरूर खुली थी। उनमें सुंदर बनाने के सुझावों से भरी किताबें और चकाचक विदेशी औरतों के चित्रों और चिकने चटक आवरण वाले अंग्रेजी के चालू उपन्यास बिकते थे।

अंग्रेजी में लिखी ज्योतिष और कैरियर को सफल बनाने वाली किताबें भी वहाँ मिल जाती थीं। पर साहित्य को छोड़िए, हिंदी की कोई किताब वहाँ नहीं दिखती थी। आजाद देश के नए बने शहर में चारों तरफ अंग्रेजी की भरमार थी। शहर में सुंदर बनाने के लिए अनगिनत ब्यूटी पार्लर खुल गए थे। सुंदर डील-डौल बनाने के लिए जिम खुल गए थे। चुस्ती-फुर्ती बनाए रखने के लिए सुंदर गोल्फ कोर्स और क्लब खुल गए थे। हृदय रोगों और मधुमेह पीड़ितों के लिए सुंदर दवाखाने खुल गए थे जिनमें मौजूद हर चिकित्सक अपने को विशेषज्ञ कहता था। इतनी सारी सुंदर चीजों के बीच मयंक जी को एक सुंदर तो क्या असुंदर पुस्तकालय की परछाई भी नजर नहीं आई। कुछ बुद्धिजीवियों ने जरूर एक काफी हाउस बनाने की माँग उठाई थी। वैसे उनमें से कुछ बुद्धिजीवियों ने पैसों के बल पर संपन्न क्लबों में अपनी घुसपैठ कर ली थी। उन क्लबों में भद्रजन शराब पीकर ताश की चिकनी गड्डियों से अपना मन बहलाते थे। उन क्लबों में इसके अलावा स्नूकर, बिलियर्डस, टेबल तथा लॉन टेनिस खेलने की व्यवस्था थी। पर सबसे ज्यादा मन भद्रजनों का राजनीतिक बहस और अफवाहों में लगता था। इतनी ऊँची किस्म की व्यवस्थाओं में किताबों की बात सोची ही नहीं जा सकती थी, नहीं तो बड़े क्लबों में क्या लाइब्रेरी नहीं बनाई जा सकती? पहले के क्लबों में जरूर होती थी।

इस बीच शहर में कई साइबर ढाबे और कैफे खुल गए थे। अंग्रेजी फ़िल्में दिखाई जाने के लिए दो सिनेमा हॉल भी खुल गए थे। नई पीढ़ी इन्हीं जगहों में अपना वक्त बिताना ज्यादा पसंद करती थी। मयंक जी ने पुस्तकालय की छानबीन से निराश होकर कई सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं और ट्रस्टों से जुड़े लोगों से बात की। किसी में भी पुस्तकालय के प्रति उत्साह नहीं था। वे बोले, 'अरे साहब, साहित्यिक किताबें पढ़ने की अब किसे फुर्सत है? अब तो लौंडे जनरल नॉलेज की किताबें पढ़ लेते हैं, उसी में मोटामोटी सब मिल जाता है। उसी को पढ़कर कई लोग छप्पर फाड़ के लखपति-करोड़पति भी बन चुके हैं।'

मयंक जी ने उन्हें इसके बावजूद पुस्तकालय बनाने के लिए प्रेरित करने की कोशिश की, अच्छे साहित्य के जरिए अच्छे संस्कारों की चर्चा की, खुद कई सौ किताबें पुस्तकालय के लिए मुफ्त देने की बात की पर उनमें से कोई भी मयंक जी की बातों से प्रेरित नहीं हुआ। वे नेताओं, अभिनेत्रियों, अधिकारियों, यहाँ तक कि बड़े स्तर के गुंडों की बातों से भी प्रेरणा ग्रहण करते थे। मयंक जी जैसे कलमघसीटों से नहीं।

मयंक जी ने इस संबंध में एक पत्र बनाकर चार अखबारों को भी भेजा। एक अखबार ने जरूर उस पत्र को काट-छाँट कर 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ में छाप दिया। मयंक जी अपने पत्र की बोनसाई को लेकर नगर के मुख्य प्रशासक से मिले और सरकार के सहयोग से पुस्तकालय बनाने की माँग रखी। प्रशासक ने अगले वित्तीय वर्ष में विचार करने का आश्वासन दिया। मयंक जी लौट आए।

इस तरह पुस्तकालय की चर्चा करते, संभावना की तलाश करते तीन ऋतुएँ बीत गईं। उस प्रशासक का तबादला हो गया। शहर में एक आलीशान होटल खुल गया जिसके बेहतरीन बार का उद्घाटन एक विदेशी अभिनेत्री ने किया, जो एक फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में भारत में आई थी। शहर के सभी मोटी जेब वालों को उस दिन वहाँ आमंत्रित किया गया था, जिन्होंने वहाँ जाकर एक छोटा-सा गदर मचाया। होटल के अलावा इन कुछ महीनों में तीन विदेशी फास्ट फूड के रेस्तराँ खुले, सरकारी भूमि का अतिक्रमण कर पाँच मंदिर, दो मस्जिद और एक गुरुद्वारा बनाया गया, दलित सेना ने हल्ला बोलकर एक सार्वजनिक पार्क को अंबेडकर पार्क घोषित करके उसके बीचोबीच गौतम बुद्ध और बाबा साहब की मूर्तियाँ लगा दीं। हाँ, दो अंग्रेजी स्कूल भी अपने भव्य भवनों के साथ प्रकट हुए थे जिनमें अपने बच्चों के प्रवेश के लिए लोग मन और धन लुटाने को तैयार थे। इतना सब होने के बावजूद मयंक जी कोई पुस्तकालय नहीं खुलवा पाए, जहाँ अपनी किताबों का वे सदुपयोग कर पाते। उन्होंने पब्लिक स्कूलों की लाइब्रेरियों से भी संपर्क किया। उन्हें हिंदी, वह भी साहित्य की

किताबों से कोई मतलब नहीं था। उनकी माँग अंग्रेजी किताबों की थी, वह भी कैरियर संबंधी।

जैसा कि पता था, उस मकान को छोड़ने का समय आ चुका था। मकान मालिक ने नोटिस दिया था। इस बीच शहर में मकानों का किराया इतना बढ़ गया था कि मयंक जी के लिए वर्तमान फ्लैट से किसी छोटे फ्लैट में जाने की बाध्यता हो गई। हर बार मकान छोड़ने के बाद नए मकान का किराया बढ़ जाता और जगह कम हो जाती। इस बार जो हालत थी उसमें अपना कुछ फर्नीचर बेचे बिना फ्लैट में रहना मुश्किल था।

हर बार मकान छोड़ने की स्थिति आने पर मयंक जी बेहद तनाव में जीते। अपना मकान न बना पाने के लिए राजेश्वरी उन्हें जिम्मेदार मानतीं। मयंक जी को जली-कटी सुनातीं। बेटा प्रस्तुत भी पीछे नहीं रहता। वह कहता, 'अपनी जिदगी तो सर्कस की जिंदगी हो गई है माँ! तंबू खोलो और तंबू तानो।'

मयंक जी के पास पढ़ने की एक बड़ी मेज थी। राजेश्वरी ने कहा, 'यह मेज बहुत जगह घेरती है, इसे बेच दो।' शादी के वक्त मिला डबलबेड का पलँग भी ज्यादा जगह घेरता था। उसे भी बेचना तय हुआ। डाइनिंग टेबल भी जगह घेरता था। इसे बेचकर एक गोलाकार फोल्डिंग डायनिंग टेबल खरीदने की बात सोची गई। किताबों की चार आलमारियों में से तीन आलमारियाँ बेचने का भी फैसला कर लिया गया। पढ़ने की मेज, आलमारियाँ मयंक जी ने दर्जनों में से पसंद करके बड़े अरमान से खरीदी थीं। इन्हें खरीदते वक्त उन्होंने अपने कितने ही खर्चों की कटौती की थी। मगर अब बेचने की लाचारी थी।

मयंक जी ने अखबार में फर्नीचर बेचने का विज्ञापन दे दिया। साथ ही अपनी पुस्तकें भी सुयोग्य पात्र और संस्था को बिना मूल्य देने की सूचना छपवा दी। पुस्तकों सहित आलमारी देने का प्रस्ताव उन्होंने मोटे अक्षरों में छपवाया था। मगर शर्त यही थी कि लेने वाला गुणी हो, जो पुस्तकों की हिफाजत करे।

विज्ञापन के जवाब में उनसे फर्नीचर खरीदने के लिए कई लोग आए। उसमें से जिसे जो फर्नीचर पसंद आया, सस्ते में सौदा करके उठा ले गया। पुस्तकों सहित आलमारी लेने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ। एक व्यक्ति अपनी दुकान में अपना सामान रखने के लिए उन्हें चाहता था। भरी आलमारी उसके लिए बेकार थी। मजबूरन सारी किताबें निकालकर उसे खाली आलमारी आधी से भी कम कीमत पर बेच दी गई। पंद्रह दिनों के अंदर फर्नीचर निकल गया। पुस्तकें रह गईं।

मयंक जी के भीतर कितनी तकलीफ थी उसे वे बता नहीं पाते थे। किताबों से बिछुड़ने की बात सोचकर वे उन किताबों से जैसे और चिपकते जा रहे थे। वे दिन भर उन किताबों के बीच बैठे उनके पन्ने पलटते और अपने खयालों में डूब जाते। हर पुस्तक को देखते और याद आता उसे उन्होंने कब और कैसी तंगी के बीच खरीदा था। एक पुस्तक तो कई वर्षों ढूँढ़ने के बाद उन्हें मिली थी। दो पुस्तकें ऐसी थीं, जिन्हें खरीदने के बाद उनके पास घर लौटने के पैसे कम पड़ गए थे। वे उस दिन घर पैदल आए थे। एक दिन कुछ चीजें खरीदने निकले थे, मगर किताब की दुकान में एक महँगी किताब पसंद आ गई तो वे सामान खरीदने की बात भूलकर उसे खरीद लाए थे। उस दिन राजेश्वरी से उन्हें झिड़क खाने को मिली थी। एक किताब के कारण तो उनकी एक मित्र से अनबन हो गई थी। कुछ किताबें तो उन्हें कॉलेज में इनाम में मिली थीं। कुछ दोस्तों ने अपने हस्ताक्षर कर उन्हें प्रेम से दी थीं। हर किताब पर वे हाथ फेरते और वह किताब जैसे बोलने लगती। उन्हें इस बात की तकलीफ थी कि अपनी किताबों के लिए उन्हें अभी तक कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं मिला। उनके साहित्यिक दोस्त भी उनकी मदद नहीं कर पाए। दो-चार चुनी हुई किताबें लेने के लिए तो वे तैयार थे, पर सारी नहीं।

मयंक जी को एक बात याद करके हँसी आ गई। एक बार उनके घर में एक लड़का काम करने आया था। उन दिनों रामेश्वरी अस्वस्थ रहती थीं। उनकी मदद के लिए अपने एक परिचित की सिफारिश पर उसे रख लिया। वह लड़का काम-काज में ठीक ही था। दिन बीत रहे थे। एक दिन प्रस्तुत ने उसे बाजार में कबाड़ी की दुकान पर उसे उनकी दो-तीन किताबें बेचते पकड़ लिया। पता चला वह अकसर मयंक जी की पुस्तकों के ढेर से एक-दो मोटी-मोटी पुस्तकें छाँटकर बाहर बेच आता था। उन पैसों से कुछ खा-पी आता। मयंक जी ने भी जब स्थिर मन से ढूँढ़ा तो पता चला, दर्जन से ज्यादा मोटी किताबें वह पार कर चुका था। उसे उन्होंने उसी दिन हाथ जोड़कर विदा किया और कसम खा ली कि अब किसी ऐसे चटोरे को घर में नहीं घुसाएँगे। मयंक जी को इस वक्त लगा कि चलो अच्छा हुआ, उनकी किताबें किसी गरीब के काम आई। इस वक्त तो ये किताबें वाकई पूरे परिवार के लिए बोझ थीं।

मयंक जी जब बोझिल मन से बैठे थे और उन्हें कोई राह नहीं सूझ रही थी तभी उनके फ्लैट की घंटी बजी। प्रस्तुत ने दरवाजा खोला। बाहर एक व्यक्ति खड़ा था। उसने कहा, 'सुना है आपके यहाँ किताबें हैं। मैं उन्हें लेने आया हूँ।'

प्रस्तुत खुशी से उछल पड़ा। उसने कहा, 'भीतर आइए।' उसके भीतर आने के बाद प्रस्तुत ने कहा, 'ये किताबें लेने आए हैं। दे दीजिए।' फिर प्रस्तुत ने पूछा, 'आप किताबें

ले किसमें जाएँगे?' उसने कहा, 'अपना ठेला है। रिक्शा ठेला।' मयंक जी ने पूछा, 'आप करते क्या हैं?'

'जी कबाड़ी हूँ।' मयंक जी चौंके। बोले, 'मैं पुस्तकें कबाड़ में बेचना चाहता हूँ, यह आपसे किसने कहा?' 'दिन भर इसी धंधे में घर-घर घूमते रहते हैं बाबू जी! पता चल गया।' 'ये बहुत अच्छी किताबें हैं। इन्हें कबाड़ में कैसे बेचा जा सकता है?' 'बाबू जी, इससे भी अच्छी किताबें, नई-नई किताबें भी लोग कबाड़ में ही बेच देते हैं। कई बार हम लेना नहीं चाहते तो कुछ लोग यों ही दे देते हैं।' 'यों ही?' मयंक के मुँह से निकला। वे चुप हो गए। 'अरे वाह, यों ही कैसे दे दें?' कबाड़ी आया देखकर प्रस्तुत की वणिक बुद्धि जाग उठी।प्रस्तुत ने कहा, 'अरे ये सारी टॉप की स्टोरी, नॉवेल, पोइट्री की किताबें हैं। हर किताब चौथाई कीमत पर देंगे। तुम आधी कीमत पर बेच देना?'

'हम तो किलो में खरीदते हैं बाबू! चार रुपए किलो!'

कुछ देर प्रस्तुत और कबाड़ी में मोलतोल चलता रहा। कोई भी दबने के लिए तैयार नहीं था। मयंक जी विचित्र दृष्टि से दोनों को देखते रहे। अचानक वे बोले, 'जब कबाड़ ही है तो क्या बहस करना। जब बोझ ही है तो कैसा मोह! मैं तो इन किताबों को मुफ्त में किसी योग्य व्यक्ति को देने के लिए तैयार था। खैर, यह जो दे दे, ले लो।' 'आप रेट मत खराब कीजिए पापा!' प्रस्तुत ने कहा। राजेश्वरी रसोई में थीं। वह वहीं से बोलीं, 'तुम्हारे पापा सारी जिंदगी रेट ही खराब करते आए हैं। अगर ये ढंग से अपने हुनर को बेच पाते तो हम इससे बेहतर जिंदगी जी सकते थे।'

मयंक जी उठकर भीतर कमरे में चले गए। उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। उन्हें लगा वे अँधेरे दलदल में फँस गए हैं और उसमें धँसते जा रहे हैं।